शोध मंथन, Impact Factor 5.463 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X,
186 Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com/* https://doi.org/10.31995/shodhmanthan

# भक्ति आन्दोलन युगीन भारतीय सामाजिक संचेतना का विश्लेषणात्मक अध्ययन

**डॉ. वकुल रस्तोगी**
एसोसिएट प्रोफेसर,
मेरठ कॉलेज, मेरठ, उत्तर प्रदेश

## भूमिका

10वीं शताब्दी के आस–पास सम्पूर्ण भारत छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था। ऐसा कोई भी शासक नहीं था जो पूरे भारत को एक सूत्र में बाँध सके। राष्ट्रशक्ति विघटित हो चुकी थी, यदि हम धर्म के सम्बन्ध में विचार करें तो कोई भी ऐसा धर्म उस वक्त होने लगा। अन्ततः रामानन्द, कबीर नानक जैसे संतों ने अन्धविश्वास पर कठोर प्रहार नहीं था जो सही मार्ग दर्शन कर सकें। "अन्धविश्वास फैलने लगा, जिससे धर्म दूषित किये, इस्लाम की विजय से परस्पर युद्धरत राज्यों के स्थान पर एक साम्राज्य की स्थापना हुई और समस्त देश की जनता को एक शासक की वशवर्तिता की शिक्षा मिली इससे हमारे राष्ट्रीय जीवन में शक्ति के कुछ नये तत्त्वों का समावेश हुआ और एक नई संस्कृति का अगमन हुआ।[1] मध्यकाल में यद्यपि हिन्दुओं के हाथ से राजनीतिक शक्ति छिन गई थी, किन्तु हिन्दू संस्कृति की धारा अबाध गति से प्रवाहमान होती रही। मध्यकाल का भक्ति आन्दोलन इस सत्य का साक्षी है, मुसलमानों ने नगरों में अपनी प्रभुता के केन्द्र स्थापित किये थे, देहातों में परिवर्तन के लक्षण नहीं दृष्टिगत हो रहे थे, मुसलमान की विजय ने भारत में एक क्रांति उत्पन्न की, बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मण दार्शनिकों के स्थान पर दृढ़ तुर्क यौद्धाओं के आ जाने पर भारत के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात हो गया।[2] मुसलमान आक्रांताओं का सामना भी हिन्दू जनता ने गम्भीरता से नहीं किया, कदाचित हिन्दू यही सोचते रहे कि जिस तरह से शक, हूण, सिंधियन इत्यादि जातियाँ हिन्दूसमाज में मिलकर एक हो गई थीं। मुसलमान भी हिन्दुओं में हिल–मिल जाएँगे और उनकी पृथक सत्ता समाप्त हो जाएगी परन्तु ऐसा नहीं हुआ। मुसलमानों ने हिन्दू समाज का अंग बनना कदापि स्वीकार नहीं किया।

भारत के टुकड़े–टुकड़े में बिखर जाने के कारण सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों में बदलाव तेजी से होने लगा, मुसलमानों के आने से राजनीतिक अव्यवस्था के साथ धार्मिक क्षेत्र में भी परिवर्तन होने लगे उत्पीड़न और असुरक्षा की भावना से देश का सामाजिक जीवन भी क्षीण और विच्छिन्न हो चुका था। समाज में अन्धविश्वास तथा कुरीतियाँ फैल गई थीं। ऐसी स्थिति में देश की बागडोर सन्तों के हाथों में आ गई थी। समाज को एक नई दिशा देने वाले कवि ही थे। कवियों ने समाज, धर्म, राजनीति, साहित्य तथा आचारविचारों पर गहरा प्रभाव डाला। इन समाज सुधारक कवियों एवं संतों ने मार्ग प्रशस्त किया।

## भक्ति आन्दोलन कालीन सामाजिक संचेतना

मध्यकाल में जो परिवर्तन हुए उसमें समाज की सहभागिता भी थी। वे कौन–कौन सी स्थितियों थीं जिन्होंने समाज को विकराल बना दिया था। डॉ० ए० बी० पाण्डेय ने लिखा है कि भारत की शासन प्रणाली में शासकों की श्रेश्ठता तथा शासितों की अधोनता, समानता व प्रजातंत्र की भावना की अपेक्षा अधिक रही। इसी भावना ने समाज में ऊँच–नीच की भावना का प्रसारण किया।[3] यह ऊँच–नीच की भावना जैसे हिंदुओं के सामाजिक जीवन में थी, वैसे ही मुसलमानों में भी प्रविष्ट हो गई और उनकी भाई–चारे की भावना केवल सिद्धान्त बनकर रह गई।[4] किन्तु मुसलमानों में हिन्दुओं जैसी जटिलता नहीं आने पाई वे अपेक्षाकृत उदार थे।[5] दासों की दशा समाज में गिरी हुई थी। मध्य युग में ऐसे बाजार थे जहाँ दासों को पशुओं की तरह खरीदा जा सकता था। स्त्रियों की दशा भी मध्यकाल में अच्छी नहीं थी। तुर्कों के आगमन के बाद शाही हरमों के आकार में विस्तार होने लगा और स्त्रियों का स्थान समाज में और भी गिर गया था। तत्युगीन समाज अनेक कुरीतियों से ग्रसित था, वर्णाव्यवस्था, जाति प्रथा छुआछूत, पाखण्ड, मूर्तिपूजा अन्धविश्वास जैसी कुरीतियाँ समाज में चतुर्दिक परिव्याप्त थी। संत कवि समाज की इस दुरवस्था से दुखित थे। उन्होंने देखा कि लोग नाना प्रकार के अंधविश्वासों में पड़कर हीन जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्होंने लोगों को इनसे श्रेणी के भक्तों के रूप ग्रहण किये। प्रथम वर्ग में वे भक्त थे जो ऊँची जाति से मुक्त करने का प्रयत्न किया। द्रविड़ देश से आई भक्ति ने उत्तर भारत में आकर दो आए थे। उनका असन्तोश दूसरी श्रेणी के भक्तों के असंतोश से भिन्न था। वे सामाजिक व्यवस्था से असंतुष्ट नहीं थे, वे लोगों के भोगपरक भगवद् विमुख आचरण असन्तुष्ट थे। दूसरी श्रेणी के वे भक्त थे जो निचली श्रेणी के थे, और सामाजिक अव्यवस्था के प्रति क्षुब्ध थे। इस सन्दर्भ में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन द्रष्टव्य है। उन्होंने लिखा है– 'इतना तो स्पष्ट है कि भारतवर्ष में दो प्रकार का अत्यन्त स्पष्ट सामाजिक स्तर था एक में शास्त्र के पठन–पाठन की व्यवस्था थी और उनके आदर्श पर संगठित सामाजिक व्यवस्था के प्रति सहानुभूति थी और दूसरे में सामाजिक व्यवस्था के प्रति तीव्र असन्तोश का भाव था।[6] संत कवि स्वतन्त्र चेता थे, वे शारीरिक स्वतन्त्रता से पहले वैचारिक स्वातंत्रय को महत्त्व देते थे। वे समाज की रूढ़िग्रस्त स्थिति से दुःख थे। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी की धारणा है" जिस कवि या लेखक के पास सचमुच हो कुछ कहने की वस्तु होती है उसके व्यक्तित्व का यदि विश्लेषण किया जाये तो यह मालूम होगा कि समाज में प्रतिष्ठित रूढ़ियों में वह कुछ ऐसी त्रुटि देख रहा है जो उसे बुरी तरह से खल रही है।[7] संत कवियों को सचमुच ही समाज की रूढ़ियाँ खल रही यो तभी उन्होंने मुसलमानों के रोजा, नमाज, हज, ताजिएदारी और हिन्दुओं के श्राद्ध एकादशी, तीर्थव्रत, मन्दिर सबका विरोध किया है।[8] डॉ० सुदर्शन सिंह मजीठिया ने लिखा है कि संतों ने हिन्दू और मुसलमानों दोनों के बाह्यचारों की निस्सारता बताई – 'एक ओर जहाँ उन्होंने हिन्दुओं के छापा तिलक, तीर्थ, व्रत 'संध्या' गायत्री, वेद, शास्त्र आदि को निन्दा को तो दूसरी और वहाँ मुसलमानों के रोजा, नमाज 'तसबीह' इबादत, शेख काजी आदि का भी उन्होंने विरोध किया।[9] सबसे जबरदस्त धक्का इन्होंने कर्मकाण्ड को दिया।[10]

उस समय संतों ने अपनी अनुभूतियों के आधार पर समाज को एक नई चेतन के मध्य व्यक्त किये। उनके दर्शन में शुष्कता नहीं थी, उन्होंने आडम्बरों की कटु प्रदान को, समाज में जो आडम्बर, रुढ़ियों के विरुद्ध अपने विचार सरल भाषा में समाज आलोचना की 'यही कारण है कि इनकी वाणी में जीवनगत अनुभव की सर्वांगीणता है। कबीर के सुधारवादी चिन्तन ने 19वीं शताब्दी में होने वाले सुधार आन्दोलनों के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।[11] डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के बारे में लिखा है–' सच पूछा जाये तो जनता कबीर दास पर श्रद्धा करने की अपेक्षा प्रेम अधिक करती है, इसीलिए उनके संत रूप के साथ ही उनका कवि रूप बराबर चलता रहता है। वे केवल नेता और गुरु नहीं साथी और मित्र भी हैं।[12] संत कबीर ने स्वच्छ समाज अंधविश्वास रुढ़िवादी विचारों से मुक्त समाज की कल्पना की थी। नानक ने आदर्शोमुख समाज की कल्पना की, वहीं पर सूरदास ने समाज में जो जड़ता आ गई थी, उस जड़ता को खत्म करने का प्रयास किया।

महाकवि एव संत तुलसी के 'रामचरितमानस' में जीवन का मूल्यांकन आचार की कसौटी पर किया गया है। राजा–प्रजा, पिता–पुत्र, पति–पत्नी भाई–भाई स्वामी सेवक और पड़ोसी–पड़ोसी के सुन्दर स्वस्थ सम्बन्धों पर आधारित समाज आचार के बल पर ही जी सकता है। राम काव्य के पात्र आचार और लोक हैं मर्यादा की आदर्श व्यवस्था प्रस्तुत करते है। इनका चरित्र महान और अनुकरणीय है। इनमें जीवन की सभी वृत्तियाँ चित्रित हैं, तुलसी ने बड़ी निर्भीकता से रावणत्व पर रामत्व की विजय दिखाकर असत्य पर सत्य की विजय की उद्घोषणा की। तुलसी के समय का समाज नैतिक धार्मिक सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से हासोन्मुख था। तुलसी के सामने एक महान दायित्व था, जिसे उन्होंने अपने कौशल से पूर्ण करना था। जिस प्रकार योगीराज कृष्ण ने ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय करके वन समूह का मार्ग प्रशस्त किया था। महात्मा बुद्ध ने वैदिक कर्मकाण्ड और हिंसावाद का विरोध करके जनता का नेतृत्व किया, उसी प्रकार तुलसी ने सभी क्षेत्रों में समन्वयवाद का विराट् आदर्श प्रस्तुत करके समाज को उन्नति की ओर अग्रसारित किया, लोककल्याण में तुलसी की आस्था उनके उदार मानवतावादी दृष्टिकोण की परिचायक है। तुलसी ने अपने युग की सामाजिक विपन्नता के चित्र–यत्र–तत्र प्रस्तुत किये हैं।[13] सूरदास राष्ट्र, समाज, सम्प्रदाय के लिए कटु नहीं थे। उन्होंने तुलसी की तरह समाज, परिवार, राजा, प्रजा को नई दृष्टि नहीं दी। सूर सेना नायक थे कि सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करते, उनकी कविता प्रेम की कविता थी, उन्होंने कृष्ण की प्रेम भावना का प्रचार किया।

मीरा भी कृष्ण के प्रेम में दिवानी थी। इसीलिए मीरा ने समाज में प्रेम का प्रवाह किया, चौतन्य ने भी प्रेम सद्भाव का वातावरण उत्पन्न किया, उन्होंने ऊँच–नीच की भावना को खत्म किया दुःख मग्न मानवता को देखकर उनके संतप्त हृदय के उद्गार फूट पड़े थे– 'मानवता के दुःखो को देखकर मेरा हृदय फट पड़ता है, हे कृष्ण! उनके समस्त पापों का भार मेरे सिर पर डाल दो, उनके पापों के लिए मैं नारकीय यातनायें भोगूं जिससे तुम अन्य सभी प्राणियों के सांसारिक क्लेशों को दूर कर दो।[14] इस प्रकार मध्य युग (भक्ति–काल) में कबीर, तुलसी, सूर नानक, सूफियों ने जो आन्दोलन चलाया उसका प्रभाव समाज पर पड़ा, क्योंकि इनका सीधा

सम्बन्ध जनमानस से था। इन लोगों ने हिन्दू–मुसलमानों के मध्य जो अन्तर आ गया था उसे खत्म करने का सफल प्रयास किया। भक्ति आन्दोलन युगीन कवियों की नारी विषयक धारणा पर दृष्टि डाले बिना उनके सामाजिक परिवर्तन के प्रयास को पूरी तरह से नहीं समझा जा सकता।

संत कवियों ने नारी को माया का प्रतीक माना है।[15] उनके विश्वासानुसार कनक और कामनी दो दुर्गम घाटियाँ हैं। नारी की झाई मात्र से ही साँप तक अन्धा हो जाता है। फिर नारी के निरन्तर सम्पर्क में रहने वाले लोगों की दुर्गति का अनुमान ही नहीं हो सकता। सुन्दरदास की दृष्टि में नारी एक सघन वन के समान है, जो वहाँ पर जाता है तो राह भूल जाता है।[16] पतिव्रता नारी के आदर्श की उनहोंने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। लगता है पतिव्रता का आदर्श उनकी साधना के निकट पड़ता था। सती के गुणों से संत साधक प्रभावित थे।[17] उनकी दृष्टि में नारी का रूप ही निन्दनीय था। सूफी संत के मतानुसार नारी परमात्मा का प्रतीक है, नारी के बिना संसार की सृष्टि अपूर्ण है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने कहा है– 'सूफी कवियों ने नारी को अपनी प्रेम साधना के साध्य रूप में स्वीकार किया है, जिसके कारण वह उनके यहाँ किसी प्रेमी के लौकिक जीवन की निरी भोग्य वस्तु मात्र नहीं रह जाती है। वह उस प्रकार की साधन सामग्री भी नहीं कहला सकती, जिसमें उसे बौध सहज यतियों ने मुद्रा नाम देकर सहज साधना के लिए अपनाया था। वह इन साधकों की दृष्टि में स्वयं एक सिद्धि बनकर आती है और इसी कारण इन प्रेमाख्यानों में उसे प्रायरू अलौकिक गुणों से युक्त भी बतलाया जाता है।[18] तुलसी की नारी के प्रति कोई उच्च भावना नहीं थी, जितनी उनसे लोगों ने अपेक्षा की थी। डॉ० शिव कुमार शर्मा ने लिखा है– "रामायण में जिस किसी माध्यम से नारी के विषय में अभिव्यक्त किये गये कटु विचारों के पीछे मातष सत्ता युग की समाप्ति के पश्चात् क्रमशः स्वार्थी पुरुष द्वारा नारी के अधःपतन तथा उनके दमघोंटू शोषण का इतिहास सन्निहित है।''

मध्य युगीन नारी इस प्रकार आत्मविश्वास से वंचित और हीन ग्रंथियों से युक्त हो गई थी कि वह स्वयं अपनी भर्त्सना के लिए संकोच नहीं करती है।[19] कृष्णकाव्य में नारियों को दो रूपों में मान्यता दी गई– 'सामान्य और विशेष। विशेष रूप में नारी परमब्रह्म कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति के रूप में स्वीकार की गई। अतः अनेक स्थलों पर युगल रूप में उनकी उपासना भी की गई। इस दृष्टि से गोपियाँ भी सामान्य नारी न होकर वेद की ऋचायें तथा पुरुषोत्तम कृष्ण की रसात्मक शक्ति मानी गई हैं। इसलिए इन्हें सामाजिक दृष्टि से मुक्त और निर्दोश कहा गया, लेकिन सामान्य नारी के लिए परम्पराओं और मर्यादा का पालन हो श्रेयस्कर माना गया है। कृष्ण भक्त कवियों को भी नारी का काम–वासनामय भोगपरक रूप त्याज्य रहा है।[20] भक्तिकाल में संत कवियों ने नारी के पतिव्रता रूप को स्वीकार किया है। नारी के अन्य रूपों को अस्वीकार करते हुए नारी की निंदा की है। सिक्ख गुरुओं ने नारी की कहीं भी निन्दा नहीं की। मारवाड़ वाले दरिया साहब कहते हैं कि नारी तो जगत् की जननी है। पाल–पोस कर बड़ा करती है ओ मूर्ख राम को भुलाकर उस पर क्यों दोष–रोपण करता है।[21] शिवनारायणी सम्प्रदाय में भी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर तक माना गया है और स्त्रियाँ मठाधीश तक बन सकती हैं। गुरु नानक ने स्त्री–पुरुष को समान दृष्टि से देखा था। उन्होंने कहा था कि पुरुषों और स्त्रियों के समान

अधिकार हैं। भगवान की दृष्टि में स्त्री–पुरुष दोनों समान हैं। इसलिए उन्होंने स्त्रियों से ईश्वर की उपासिका बन जाने के लिए कहा। उन्होंने पतिव्रता के महत्व को समझाया। स्त्री की शोभा उसका शरीर नहीं है। उसके द्वारा पति के लिए अपने प्रेम की अभिव्यक्ति है। उन्होंने ऐसी विधवा स्त्रियों की निन्दा की जो धन की लिप्सा के लिए शरीर का व्यापार करती हैं। वे वेश्यावृत्ति के विरोधी थे, नानक ने सती प्रथा का भी विरोध किया।[22]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मध्य काल में भक्ति आन्दोलन के प्रारम्भ होने से समाज में आ रही गतिहीनता का अंत होना आरम्भ हुआ तथा वैचारिक क्रान्ति को गति मिलनी आरम्भ हुई। जिसमें अनेक संतों एवं सूफियों ने अपने अपने स्तर पर सहभागिता दी। संतों की वाणियों, दोहों, कविताओं, गीत, भजन आदि जन मानस में विचार पैदा करने में सहायक सिद्ध हुए। जिससे रूढ़िगत होता जा रहा समाज पुनः नवीन चेतना के साथ उठ खड़ा हुआ। संत मूलतः भक्त थे। उनका यह मानना था कि भक्ति ही ऐसा माध्यम है जो समाज में व्याप्त अव्यवस्थाओं को खत्म कर सकता है। समाज को बड़ा बनाया जा सकता है। संतों ने जनता को अपनी ओर आकर्शित किया। लोगों को मुक्ति का मार्ग दिखाया। वास्तव में भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज एवं जीवन को नये रूप में ढालने की चेष्टा की थी। उनके सामने एक ऐसे समाज की परिकल्पना थी, जिसका मूलाधार समानता और न्याय की भावना थी।

## सन्दर्भ

1. डॉ. ईश्वरी प्रसाद, भारतीय मध्ययुग का इतिहास (1200 से 1526 ई.), 1955 संस्करण, इलाहाबद, विषयप्रवेश, पृ. 4
2. वही
3. प्रो० ए० बी० पाण्डेय, अर्ली मेडिवल इंडिया, द्वितीय संस्करण 1977, इलाहाबाद, पृष्ठ 320
4. वही, पृष्ठ 321
5. वही, पृष्ठ 322
6. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्म साधना, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद,पृष्ठ 88 ।
7. प्रो० ए० बी० पाण्डेय, अर्ली मीडिवल इंडिया सेण्ट्रल बुक डिपो, इलहाबाद, संस्करणरू 1977, पृष्ठ 334।
8. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, पृष्ठ 133
9. 10. डॉ० सुदर्शन सिंह मजीठिया, संत साहित्य, प्रथम संस्करण, 1962 ई० दिल्ली, पृष्ठ 317
10. वही, पृष्ठ 3171
11. प्रो० बी० एन० लूनिया, लाइफ एंड कल्चर इन मेडिवल इंडिया प्रथम संस्करण, 1978, इन्दौर, पृष्ठ 438

12. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, द्वितीय वर्षत्ति 1973 दिल्ली, पृष्ठ 223
13. तुलसीदास, तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खंड (कवितावली), पृष्ठ 225
14. डॉ० ईश्वरी प्रसाद, भारतीय मध्ययुग का इतिहास, संस्करणरू 1955, इलाहाबाद, पृष्ठ 559
15. बाबूश्याम सुन्दर दास, संपादक रू कबीर ग्रंथावली, पद 84, पृष्ठ 114
16. संत सुधाकर, दूसरा भाग, पृष्ठ 438
17. बाबूश्याम सुंदर दास, संपादक रू कबीर ग्रंथावली, निश्कर्मी पतिव्रता को अंग, साखीसं० 18, पृष्ठ 20 संस्करणरू 1928, प्रयाग।
18. डॉ० शिव कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पंचम संस्करण रू 1970, दिल्ली, पृष्ठ 154
19. वही, पृष्ठ 227
20. श्यामबाला गोयल, भक्ति कालीन राम तथा कृष्ण काव्य की नारी–भावना रू एक तुलनात्मक अध्ययन प्रथम संस्करण 1976 साहिबाबाद, गजियाबाद उ० प्र०, पृष्ठ 264
21. दरिया साहब की बानी, वि० वि० प्रेस, पृष्ठ 43।
22. प्रो० बी० एन० लूनिया, लाइफ एंड कल्चर इन मेडिवल इंडिया, प्रथम संस्करण, 1978 इन्दौर, पृष्ठ 442